Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 ISSN No: 3049-4176

उत्तराखण्ड में पर्यावरणीय न्यायिक सक्रियता और सतत विकास की चुनौतियाँ

ज्योति धर्मशक्तू

शोधकर्ता, राजनीति विज्ञान विभाग,

कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

सार

यह अध्ययन उत्तराखण्ड राज्य में पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में न्यायिक सक्रियता (Judicial Activism) की भूमिका का समग्र एवं विश्लेषणात्मक परीक्षण प्रस्तुत करता है। हिमालयी पारिस्थितिकी की संवेदनशीलता, तीव्र अवसंरचनात्मक विकास, अनियोजित पर्यटन तथा जलवायु परिवर्तन के बढ़ते प्रभावों ने राज्य को गंभीर पर्यावरणीय चुनौतियों के समक्ष खड़ा कर दिया है। विशेषतः 2013 Kedarnath floods जैसी घटनाओं ने पर्यावरणीय शासन एवं नियामक तंत्र की सीमाओं को उजागर किया है।

अध्ययन का मुख्य उद्देश्य Uttarakhand High Court द्वारा पर्यावरणीय मामलों में दिए गए निर्णयों का संवैधानिक, विधिक एवं नीतिगत विश्लेषण करना है। शोध में गुणात्मक अनुसंधान पद्धति का प्रयोग किया गया है, जिसमें ऐतिहासिक, वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक दृष्टिकोणों का समन्वय किया गया। न्यायालयीन आदेशों, लोकहित याचिकाओं (PIL), आधिकारिक अभिलेखों तथा द्वितीयक साहित्य के आधार पर विषयवस्तु विश्लेषण (content analysis) किया गया।

अध्ययन से स्पष्ट होता है कि न्यायालय ने अनुच्छेद 21 के व्यापक अर्थ की व्याख्या करते हुए स्वच्छ एवं स्वस्थ पर्यावरण को जीवन के मौलिक अधिकार से जोड़ा है। न्यायिक हस्तक्षेपों ने पॉलीथीन प्रतिबंध, अवैध निर्माण पर रोक तथा अतिक्रमण हटाने जैसे उपायों के माध्यम से प्रशासनिक जवाबदेही को सुदृढ़ किया है। तथापि, यह भी निष्कर्षित हुआ कि न्यायिक सक्रियता दीर्घकालिक समाधान का विकल्प नहीं है; इसके लिए सुदृढ़ नीतिगत क्रियान्वयन, वैज्ञानिक नियोजन एवं जनसहभागिता अनिवार्य है।

अतः यह अध्ययन पर्यावरणीय न्यायशास्त्र के क्षेत्र में Supreme Court of India एवं उच्च न्यायालयों की सक्रिय भूमिका के संदर्भ में उत्तराखण्ड का एक विशिष्ट केस-स्टडी प्रस्तुत करता है तथा पर्यावरणीय लोकतंत्र एवं सतत विकास की दिशा में न्यायपालिका की संस्थागत भूमिका का समालोचनात्मक मूल्यांकन करता है।

मुख्य शब्द : न्यायिक सक्रियता, पर्यावरणीय न्यायशास्त्र, लोकहित याचिका, उत्तराखण्ड, सतत विकास, पर्यावरणीय शासन।

1. प्रस्तावना

समकालीन विकास विमर्श में यह व्यापक रूप से स्वीकार किया गया है कि किसी भी समाज का समग्र एवं सतत विकास उसके मानव संसाधनों की गुणवत्ता, संस्थागत संरचनाओं तथा पर्यावरणीय चेतना पर निर्भर करता है। मानव केवल प्राकृतिक संसाधनों का उपभोक्ता नहीं है; वह उनका रूपांतरणकर्ता, नियामक एवं संरक्षक भी है। वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति ने मानव को प्राकृतिक संसाधनों के दोहन की अभूतपूर्व क्षमता प्रदान की है, किंतु इसी प्रक्रिया ने पर्यावरणीय असंतुलन, प्रदूषण तथा जलवायु परिवर्तन जैसी वैश्विक चुनौतियों को भी जन्म दिया है (Pandey, 2004)।

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 ISSN No: 3049-4176

मानव और पर्यावरण का संबंध परस्पर आश्रित (interdependent), अंतःक्रियात्मक (interactive) तथा गतिशील (dynamic) है। पर्यावरणीय संसाधनों का संरक्षण अथवा विनाश अंततः मानव अस्तित्व, स्वास्थ्य एवं सामाजिक संरचनाओं को प्रभावित करता है। इस प्रकार पर्यावरणीय प्रश्न केवल पारिस्थितिकी तक सीमित नहीं रहते, बल्कि वे राजनीतिक, आर्थिक एवं नैतिक विमर्श का अभिन्न अंग बन जाते हैं।

'पर्यावरण' शब्द की व्युत्पत्ति फ्रांसीसी शब्द *Environ* से मानी जाती है, जिसका अर्थ है—"चारों ओर से घिरा हुआ।" व्यापक अर्थ में पर्यावरण भौतिक, जैविक तथा सामाजिक तत्त्वों के समेकित तंत्र को इंगित करता है, जिसमें भूमि, जल, वायु, आकाश, जैव-विविधता एवं मानव-निर्मित संरचनाएँ सम्मिलित हैं (Singh, 2016)। इसे जैविक (biotic) एवं अजैविक (abiotic) घटकों की अंतर्संबद्ध प्रणाली के रूप में समझा जाना चाहिए।

प्रो. एस. एस. पुरोहित के अनुसार, पर्यावरण विभिन्न आत्मनिर्भर सजीव एवं निर्जीव घटकों के मध्य संतुलित सामंजस्य की अवधारणा है (Purohit et al., 2014)। जब यह संतुलन संसाधनों के अंधाधुंध दोहन, प्रदूषण या अव्यवस्थित विकास के कारण भंग होता है, तब पर्यावरणीय अवनयन, जैव-विविधता में कमी तथा प्राकृतिक आपदाएँ तीव्र रूप धारण कर लेती हैं। अतः पर्यावरण केवल भौतिक परिवेश नहीं, बल्कि एक समग्र जीवंत तंत्र है, जिसकी स्थिरता मानव अस्तित्व के लिए अनिवार्य है। इसी संदर्भ में पर्यावरण संरक्षण, सतत विकास तथा पर्यावरणीय न्याय (environmental justice) समकालीन राजनीतिक विज्ञान के केंद्रीय विषय बन गए हैं।

2. शोध पद्धति

इस अध्ययन में गुणात्मक (qualitative) अनुसंधान पद्धति को अपनाया गया है, जिसमें ऐतिहासिक, वर्णनात्मक तथा विश्लेषणात्मक दृष्टिकोणों का समन्वित प्रयोग किया गया।

ऐतिहासिक पद्धति के माध्यम से भारत में पर्यावरणीय न्यायशास्त्र के विकास तथा लोकहित याचिका (Public Interest Litigation—PIL) की परंपरा का क्रमिक अध्ययन किया गया (Sathe, 2002)।

वर्णनात्मक पद्धति के अंतर्गत Uttarakhand High Court द्वारा पर्यावरण संरक्षण से संबंधित मामलों में दिए गए निर्णयों का व्यवस्थित संकलन एवं प्रस्तुतीकरण किया गया।

विश्लेषणात्मक पद्धति के अंतर्गत इन निर्णयों के संवैधानिक आधार, विधिक तर्क, प्रशासनिक प्रभाव एवं नीतिगत परिणामों का परीक्षण किया गया। न्यायिक निर्णयों का विषयवस्तु विश्लेषण (content analysis) किया गया, जो दस्तावेजीय सामग्री के गुणात्मक परीक्षण की एक मान्य तकनीक है (Krippendorff, 2018)।

तुलनात्मक विश्लेषण के माध्यम से न्यायालय द्वारा अपनाए गए सिद्धांतों—सतत विकास (sustainable development), सावधानी सिद्धांत (precautionary principle) तथा प्रदूषक भुगतान सिद्धांत (polluter pays principle)—का परीक्षण किया गया (Jain, 2016)।

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 ISSN No: 3049-4176

2.1 अध्ययन क्षेत्र

अध्ययन का भौगोलिक क्षेत्र उत्तराखण्ड राज्य तक सीमित है। हिमालयी भू-भाग, पारिस्थितिक संवेदनशीलता, तीर्थाटन एवं तीव्र अवसंरचनात्मक विकास के कारण यह क्षेत्र पर्यावरणीय दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है।

अध्ययन में पर्यावरणीय मामलों से संबंधित उच्च न्यायालय के निर्णयों, लोकहित याचिकाओं तथा उनके प्रशासनिक अनुपालन की स्थिति का परीक्षण किया गया।

2.2 स्रोत

(क) प्राथमिक स्रोत

- संरचित एवं अर्द्ध-संरचित साक्षात्कार
- प्रश्नावली आधारित सर्वेक्षण
- न्यायालयीन अभिलेख एवं आदेश

सामाजिक विज्ञान अनुसंधान में साक्षात्कार एवं सर्वेक्षण अनुभवजन्य साक्ष्य संकलन के महत्वपूर्ण माध्यम माने जाते हैं (Creswell & Creswell, 2018)।

(ख) द्वितीयक स्रोत

- पर्यावरणीय विधि संबंधी पुस्तकें एवं शोधपत्र
- संवैधानिक एवं विधिक दस्तावेज
- सरकारी रिपोर्टें
- आधिकारिक वेबसाइटें

3. पर्यावरण की संकल्पना एवं प्रकार

पर्यावरण की संकल्पना बहुआयामी एवं अंतर्विषयी (interdisciplinary) है, जिसका संबंध प्राकृतिक विज्ञान, सामाजिक विज्ञान तथा विधि अध्ययन से घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है। समकालीन विमर्श में पर्यावरण को केवल भौतिक परिवेश के रूप में नहीं, बल्कि एक समेकित तंत्र (integrated system) के रूप में देखा जाता है, जिसमें जैविक, अजैविक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक तत्त्व परस्पर अंतःक्रिया करते हैं।

राजनीतिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में पर्यावरण की अवधारणा शासन, नीति-निर्माण, अधिकारों तथा उत्तरदायित्वों से भी संबद्ध हो जाती है। विशेषतः पर्यावरणीय न्यायशास्त्र (Environmental Jurisprudence) के विकास ने इस अवधारणा को संवैधानिक विमर्श का महत्वपूर्ण भाग बना दिया है। अतः पर्यावरण की संकल्पना को स्पष्ट करना इस अध्ययन की सैद्धांतिक आधारभूमि को सुदृढ़ करता है।

3.1 पर्यावरण की प्रमुख परिभाषाएँ

पर्यावरण की परिभाषा विभिन्न विद्वानों एवं प्रामाणिक स्रोतों द्वारा भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से की गई है, जिनका सार निम्नलिखित है—

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 ISSN No: 3049-4176

(1) विश्वकोषीय परिभाषा

Encyclopaedia Britannica के अनुसार, पर्यावरण उन समस्त बाह्य दशाओं, प्रभावों एवं कारकों का समूह है जो किसी जीव के जीवन-चक्र, विकास एवं अस्तित्व को प्रभावित करते हैं। इस परिभाषा में 'प्रभाव' (influences) और 'परिस्थितियाँ' (conditions) को केंद्रीय तत्व माना गया है, जो जीव और उसके परिवेश के मध्य अंतःक्रिया को रेखांकित करते हैं (Encyclopaedia Britannica, n.d.)।

(2) जैविक दृष्टिकोण

प्रख्यात पारिस्थितिकीविद् A. G. Tansley ने पर्यावरण को उन समस्त प्रभावी दशाओं का योग बताया है जिनमें जीव निवास करते हैं। टैन्सले का दृष्टिकोण पारिस्थितिकी (ecology) पर आधारित है, जिसमें जीव और उसके आवास (habitat) के मध्य पारस्परिक संबंध को प्रमुखता दी गई है। उनके द्वारा प्रतिपादित 'इकोसिस्टम' (Ecosystem) की अवधारणा ने पर्यावरण को एक समग्र तंत्र के रूप में समझने का मार्ग प्रशस्त किया (Tansley, 1935)।

(3) समेकित सामाजिक-प्राकृतिक दृष्टिकोण

Cunningham और Cunningham (2004) के अनुसार, पर्यावरण प्राकृतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का समेकित रूप है। यह परिभाषा पर्यावरण को केवल भौतिक या जैविक तत्वों तक सीमित नहीं रखती, बल्कि मानव समाज, उसकी संस्थाओं, मूल्यों एवं सांस्कृतिक व्यवहारों को भी पर्यावरण का अभिन्न अंग मानती है। इस दृष्टिकोण से पर्यावरण एक समग्र सामाजिक-प्राकृतिक तंत्र के रूप में उभरता है, जिसमें मानव गतिविधियाँ भी पारिस्थितिक संतुलन को प्रभावित करती हैं।

उपरोक्त परिभाषाओं के तुलनात्मक विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि पर्यावरण की अवधारणा समय के साथ विस्तृत एवं विकसित हुई है। प्रारंभिक परिभाषाएँ जहाँ भौतिक एवं जैविक प्रभावों तक सीमित थीं, वहीं आधुनिक दृष्टिकोण में सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक आयामों को भी समाहित किया गया है। इस प्रकार पर्यावरण को एक बहुस्तरीय एवं गतिशील संरचना के रूप में समझा जाना चाहिए, जो जीवमंडल, मानव समाज एवं शासन व्यवस्था—तीनों से अंतर्संबद्ध है।

3.1. मानव एवं पर्यावरण का संबंध

मानव और पर्यावरण का संबंध ऐतिहासिक, सामाजिक तथा राजनीतिक दृष्टि से अत्यंत गहन एवं अंतःक्रियात्मक रहा है। मानव सभ्यता का विकास-क्रम वस्तुतः पर्यावरण के साथ उसके निरंतर संवाद, अनुकूलन (adaptation) एवं परिवर्तन (modification) की प्रक्रिया का इतिहास है। प्रारंभिक मानव प्राकृतिक संसाधनों पर प्रत्यक्ष रूप से निर्भर था तथा वह पर्यावरणीय परिस्थितियों के अनुरूप जीवन-यापन करता था।

कृषि क्रांति ने मानव-पर्यावरण संबंधों में निर्णायक परिवर्तन किया, क्योंकि इसके माध्यम से मानव ने भूमि, जल एवं जैव संसाधनों को नियंत्रित एवं व्यवस्थित करना आरंभ किया। पशुपालन, नगरीकरण तथा औद्योगिकीकरण के विस्तार ने इस हस्तक्षेप को और गहन बना दिया। आधुनिक युग में वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति—विशेषतः औद्योगिक क्रांति के पश्चात—ने प्राकृतिक

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 ISSN No: 3049-4176

संसाधनों के दोहन की गति को तीव्र किया, जिसके परिणामस्वरूप पर्यावरणीय असंतुलन, प्रदूषण, जैव-विविधता में कमी तथा जलवायु परिवर्तन जैसी वैश्विक समस्याएँ उभर कर सामने आईं (Bisht, 2003)।

राजनीतिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में यह संबंध केवल भौतिक नहीं, बल्कि शक्ति-संरचना (power structure), नीति-निर्माण एवं संसाधन-वितरण से भी जुड़ा हुआ है। राज्य, बाजार तथा नागरिक समाज के बीच संसाधनों के नियंत्रण और उपयोग को लेकर उत्पन्न तनाव पर्यावरणीय शासन (environmental governance) का केंद्रीय प्रश्न बन जाता है। अतः मानव-पर्यावरण संबंध को एक समग्र सामाजिक-राजनीतिक प्रक्रिया के रूप में समझना आवश्यक है।

3.2 विचारकों के मत

मानव एवं पर्यावरण के संबंध को स्पष्ट करने में विभिन्न दार्शनिकों एवं विधिवेत्ताओं ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

(1) जॉन लॉक का दृष्टिकोण

John Locke ने अपने सामाजिक एवं राजनीतिक दर्शन में अनुभव (experience) और परिवेश (environment) को व्यक्तित्व-निर्माण का महत्वपूर्ण आधार माना। उनकी 'टैबुला रासा' (Tabula Rasa) की अवधारणा के अनुसार मनुष्य जन्म के समय एक कोरी पट्टी के समान होता है, जिस पर अनुभव और परिवेश की छाप अंकित होती है (Locke, 1690/1975)। इस दृष्टिकोण से पर्यावरण व्यक्ति के बौद्धिक एवं नैतिक विकास का प्रमुख निर्धारक तत्व बन जाता है।

(2) न्यायिक दृष्टिकोण और न्यायिक सक्रियता

प्रख्यात विधिवेत्ता एवं न्यायाधीश V. R. Krishna Iyer ने न्यायिक सक्रियता को प्रशासनिक निष्क्रियता की प्रतिक्रिया के रूप में देखा। उनके अनुसार जब कार्यपालिका एवं विधायिका अपने दायित्वों के निर्वहन में असफल रहती हैं, तब न्यायपालिका को संवैधानिक मूल्यों एवं जनहित की रक्षा हेतु सक्रिय भूमिका निभानी पड़ती है (Iyer, 1987)। पर्यावरण संरक्षण के संदर्भ में यह दृष्टिकोण विशेष रूप से प्रासंगिक है, क्योंकि अनेक अवसरों पर न्यायालयों ने प्रशासनिक उदासीनता के विरुद्ध हस्तक्षेप कर पर्यावरणीय संतुलन की रक्षा का प्रयास किया है।

इस प्रकार दार्शनिक एवं न्यायिक विचारों के आलोक में स्पष्ट होता है कि मानव और पर्यावरण का संबंध केवल जैविक या भौतिक नहीं, बल्कि वैचारिक, नैतिक एवं संवैधानिक आयामों से भी गहराई से जुड़ा हुआ है।

4. पर्यावरणीय अवनयन एवं प्रदूषण

पर्यावरणीय अवनयन (Environmental Degradation) उस प्रक्रिया को इंगित करता है, जिसके अंतर्गत प्राकृतिक अथवा मानवजनित कारणों से पर्यावरण की गुणवत्ता में निरंतर गिरावट आती है। यह गिरावट भूमि, जल, वायु तथा जैव-विविधता के स्तर पर परिलक्षित होती है। औद्योगिकीकरण, तीव्र शहरीकरण, संसाधनों का अंधाधुंध दोहन तथा अनियंत्रित उपभोगवादी प्रवृत्तियाँ पर्यावरणीय अवनयन के प्रमुख कारण माने जाते हैं (Cunningham & Cunningham, 2004)।

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 ISSN No: 3049-4176

प्रदूषण पर्यावरणीय अवनयन का एक केंद्रीय कारक है, जो तब उत्पन्न होता है जब हानिकारक पदार्थ या ऊर्जा (जैसे रसायन, ध्वनि या ऊष्मा) प्राकृतिक तंत्र में इस सीमा तक प्रवेश कर जाते हैं कि वे मानव स्वास्थ्य, पारिस्थितिकी संतुलन तथा जीवन-चक्र को प्रभावित करने लगते हैं।

4.1 वायु प्रदूषण

वायु प्रदूषण औद्योगिक एवं शहरी विकास का एक गंभीर दुष्परिणाम है। ऐतिहासिक रूप से, Great Smog of London (1952) औद्योगिक वायु प्रदूषण का एक प्रमुख उदाहरण है, जिसमें कोयले के अत्यधिक दहन और प्रतिकूल मौसमीय परिस्थितियों के कारण हजारों लोगों की मृत्यु हुई। इस घटना ने पर्यावरणीय नियमन एवं वायु गुणवत्ता मानकों की आवश्यकता को वैश्विक स्तर पर रेखांकित किया (Brimblecombe, 1987)।

भारतीय संदर्भ में तीव्र शहरीकरण, औद्योगिक उत्सर्जन तथा वाहनों से निकलने वाली गैसें वायु प्रदूषण के प्रमुख स्रोत हैं। महानगरों में कणीय पदार्थ (PM2.5 एवं PM10), नाइट्रोजन ऑक्साइड तथा सल्फर डाइऑक्साइड का स्तर सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए गंभीर चुनौती प्रस्तुत करता है।

इसके अतिरिक्त, Bhopal Gas Tragedy (1984) औद्योगिक लापरवाही का एक अत्यंत दुखद उदाहरण है, जिसमें विषैली गैस के रिसाव से व्यापक जनहानि हुई। इस घटना ने औद्योगिक सुरक्षा, पर्यावरणीय उत्तरदायित्व तथा विधिक नियंत्रण की आवश्यकता को सुदृढ़ किया (Dhara & Dhara, 2002)।

4.2 जल प्रदूषण

जल प्रदूषण का मुख्य कारण घरेलू मल-जल, औद्योगिक अपशिष्ट, रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों का जल स्रोतों में अनियंत्रित प्रवाह है। इससे न केवल पेयजल की गुणवत्ता प्रभावित होती है, बल्कि जलीय जीव-जंतुओं तथा मानव स्वास्थ्य पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है (United Nations Environment Programme [UNEP], 2016)।

भारत में गंगा नदी के संरक्षण हेतु 1985 में Ganga Action Plan प्रारंभ किया गया, जिसका उद्देश्य प्रदूषण नियंत्रण एवं घाटों के सुधार के माध्यम से नदी की स्वच्छता सुनिश्चित करना था। इसके पश्चात 2009 में National Ganga River Basin Authority का गठन किया गया, जिससे नदी-प्रबंधन को संस्थागत स्वरूप प्रदान किया जा सके। यद्यपि इन प्रयासों ने नीति-निर्माण के स्तर पर महत्वपूर्ण पहल की, तथापि क्रियान्वयन की चुनौतियाँ अब भी विद्यमान हैं।

4.3 मृदा, ध्वनि एवं ताप प्रदूषण

मृदा प्रदूषण मुख्यतः रासायनिक उर्वरकों, औद्योगिक अपशिष्टों एवं ठोस कचरे के अनियंत्रित निपटान के कारण उत्पन्न होता है। इससे भूमि की उर्वरता में कमी, भू-जल प्रदूषण तथा खाद्य-श्रृंखला पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

ध्वनि प्रदूषण शहरीकरण, यातायात, औद्योगिक गतिविधियों तथा निर्माण कार्यों के कारण बढ़ता जा रहा है। World Health Organization ने ध्वनि प्रदूषण के मानकों एवं उसके स्वास्थ्य प्रभावों के संबंध में स्पष्ट दिशानिर्देश जारी किए हैं, जिनमें

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 ISSN No: 3049-4176

अत्यधिक शोर को मानसिक तनाव, हृदय-रोग तथा नींद में व्यवधान का कारण माना गया है (World Health Organization [WHO], 2018)।

ताप प्रदूषण (Thermal Pollution) मुख्यतः औद्योगिक इकाइयों एवं विद्युत संयंत्रों से उत्सर्जित गरम जल या गैसों के कारण उत्पन्न होता है, जो जलीय पारिस्थितिकी तंत्र को प्रभावित करता है। इससे जल में घुलित ऑक्सीजन की मात्रा कम होती है और जलीय जीवों के जीवन-चक्र पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि पर्यावरणीय अवनयन एवं प्रदूषण बहुआयामी समस्याएँ हैं, जिनका समाधान केवल तकनीकी उपायों से संभव नहीं है। इसके लिए प्रभावी विधिक प्रावधान, उत्तरदायी शासन, जन-जागरूकता तथा सतत विकास की नीतियों का समन्वित क्रियान्वयन आवश्यक है।

5. उत्तराखण्ड में पर्यावरणीय चुनौतियाँ

उत्तराखण्ड हिमालयी क्षेत्र में स्थित एक पारिस्थितिक दृष्टि से अत्यंत संवेदनशील राज्य है, जहाँ भौगोलिक अस्थिरता, तीव्र ढाल, भूकंपीय सक्रियता तथा जलवायु परिवर्तन के प्रभाव पर्यावरणीय जोखिमों को बढ़ाते हैं। राज्य की अर्थव्यवस्था का एक बड़ा भाग पर्यटन, तीर्थाटन एवं अवसंरचनात्मक विकास पर निर्भर है, जिसके कारण प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव निरंतर बढ़ रहा है।

2013 Kedarnath floods ने हिमालयी पारिस्थितिकी की नाजुकता को राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर उजागर किया। अत्यधिक वर्षा, हिमनद झील के फटने (Glacial Lake Outburst Flood) तथा अनियोजित निर्माण गतिविधियों ने आपदा की तीव्रता को बढ़ाया (Kala, 2014)। इस घटना ने यह स्पष्ट किया कि अनियंत्रित पर्यटन, नदी तटों पर अवैज्ञानिक निर्माण, वनों की कटाई तथा जलवायु परिवर्तन जैसे कारक प्राकृतिक आपदाओं को विनाशकारी रूप प्रदान कर सकते हैं।

वैज्ञानिक अध्ययनों के अनुसार, हिमालयी क्षेत्र में तापमान वृद्धि, वर्षा के पैटर्न में परिवर्तन तथा ग्लेशियरों के तीव्र पिघलाव से पर्यावरणीय अस्थिरता बढ़ रही है (IPCC, 2021)। अतः राज्य में विकास और पर्यावरण संरक्षण के मध्य संतुलन स्थापित करना नीतिगत एवं प्रशासनिक चुनौती बन गया है।

6. पर्यावरण संरक्षण एवं न्यायिक सक्रियता

भारतीय परिप्रेक्ष्य में न्यायपालिका ने पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में महत्वपूर्ण एवं सक्रिय भूमिका निभाई है। विशेषतः लोकहित याचिका (Public Interest Litigation—PIL) की व्यवस्था ने नागरिकों को पर्यावरणीय मुद्दों पर सीधे न्यायालय का दरवाजा खटखटाने का अवसर प्रदान किया। Supreme Court of India तथा विभिन्न उच्च न्यायालयों ने अनुच्छेद 21 के अंतर्गत 'जीवन के अधिकार' की व्यापक व्याख्या करते हुए स्वच्छ एवं स्वस्थ पर्यावरण को मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता दी है (Jain, 2016; Sathe, 2002)।

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 ISSN No: 3049-4176

इसी क्रम में Uttarakhand High Court ने राज्य में पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने हेतु अनेक महत्वपूर्ण आदेश पारित किए हैं। नैनीताल क्षेत्र में पॉलीथीन पर प्रतिबंध, झील क्षेत्र में अनियंत्रित निर्माण पर रोक तथा अतिक्रमण हटाने संबंधी निर्देश न्यायिक सक्रियता के उल्लेखनीय उदाहरण हैं। इन आदेशों का उद्देश्य न केवल पर्यावरण संरक्षण था, बल्कि प्रशासनिक जवाबदेही सुनिश्चित करना भी था।

न्यायिक सक्रियता को प्रशासनिक निष्क्रियता या नीति-क्रियान्वयन में शिथिलता के संदर्भ में समझा जा सकता है। जब कार्यपालिका पर्यावरणीय मानकों के पालन में असफल रहती है, तब न्यायालय हस्तक्षेप कर संवैधानिक मूल्यों एवं विधिक सिद्धांतों—जैसे सतत विकास एवं सावधानी सिद्धांत—को लागू करते हैं। इस प्रकार न्यायपालिका पर्यावरणीय शासन (environmental governance) में एक संतुलनकारी एवं संरक्षक संस्था के रूप में उभरती है।

हालाँकि, न्यायिक सक्रियता के साथ यह प्रश्न भी जुड़ा है कि क्या न्यायालय नीति-निर्माण के क्षेत्र में अतिक्रमण कर रहे हैं। इस संदर्भ में संतुलित दृष्टिकोण आवश्यक है, जिससे न्यायपालिका की भूमिका संवैधानिक सीमाओं के भीतर रहते हुए पर्यावरणीय संरक्षण को सुदृढ़ कर सके।

7. शोध का महत्व

प्रस्तुत अध्ययन उत्तराखण्ड में पर्यावरणीय न्यायिक सक्रियता (Environmental Judicial Activism) का एक व्यवस्थित, विश्लेषणात्मक एवं सैद्धांतिक परीक्षण प्रस्तुत करता है। हिमालयी पारिस्थितिकी की संवेदनशीलता, तीव्र विकासात्मक दबाव तथा प्राकृतिक आपदाओं की आवृत्ति को देखते हुए राज्य में न्यायपालिका की भूमिका विशेष महत्व रखती है। इस शोध के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण से संबंधित न्यायिक हस्तक्षेपों का संस्थागत, विधिक तथा नीतिगत परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन किया गया है।

प्रथम, यह अध्ययन पर्यावरणीय शासन (Environmental Governance) के क्षेत्र में न्यायपालिका की सक्रिय भूमिका को रेखांकित करता है। भारतीय संदर्भ में लोकहित याचिका (Public Interest Litigation—PIL) की परंपरा ने नागरिकों को पर्यावरणीय अधिकारों की रक्षा हेतु न्यायालय तक पहुँच प्रदान की है (Sathe, 2002)। न्यायालयों द्वारा अनुच्छेद 21 के अंतर्गत स्वच्छ एवं स्वस्थ पर्यावरण को जीवन के अधिकार का अभिन्न अंग मानने से पर्यावरणीय न्यायशास्त्र का विस्तार हुआ है (Jain, 2016)। इस पृष्ठभूमि में अध्ययन न्यायिक सक्रियता के व्यावहारिक एवं संवैधानिक आयामों को स्पष्ट करता है।

द्वितीय, यह शोध नीति-निर्माताओं, प्रशासकों एवं शोधार्थियों के लिए संदर्भ सामग्री के रूप में उपयोगी है। न्यायिक निर्णयों के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि किस प्रकार न्यायालय प्रशासनिक जवाबदेही सुनिश्चित करते हुए पर्यावरणीय मानकों के अनुपालन को बाध्यकारी बना सकते हैं। इससे नीति-निर्माण की प्रक्रिया में पारदर्शिता एवं उत्तरदायित्व को सुदृढ़ करने के लिए दिशा-निर्देश प्राप्त होते हैं।

तृतीय, अध्ययन पर्यावरण संरक्षण में जनसहभागिता (Public Participation) की आवश्यकता को रेखांकित करता है। पर्यावरणीय लोकतंत्र (Environmental Democracy) की अवधारणा इस विचार पर आधारित है कि नागरिकों की

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 ISSN No: 3049-4176

सक्रिय भागीदारी के बिना सतत विकास संभव नहीं है (United Nations Environment Programme [UNEP], 2019)। न्यायिक सक्रियता, विशेषतः लोकहित याचिकाओं के माध्यम से, नागरिक समाज को सशक्त बनाती है और पर्यावरणीय अधिकारों की रक्षा में सामूहिक चेतना को प्रोत्साहित करती है।

चतुर्थ, यह शोध न्यायपालिका की भूमिका के संस्थागत प्रभावों का मूल्यांकन करता है। न्यायिक हस्तक्षेप न केवल विशिष्ट मामलों के समाधान तक सीमित रहता है, बल्कि दीर्घकालिक रूप से प्रशासनिक संरचनाओं, नीति-निर्माण प्रक्रियाओं तथा पर्यावरणीय नियमन तंत्र को प्रभावित करता है। इस प्रकार अध्ययन यह समझने का प्रयास करता है कि न्यायिक सक्रियता किस प्रकार राज्य की संस्थागत कार्यप्रणाली में संतुलन एवं उत्तरदायित्व स्थापित करती है।

अंततः, यह शोध पर्यावरण संरक्षण, संवैधानिक मूल्यों तथा लोकतांत्रिक शासन के मध्य अंतर्संबंध को स्पष्ट करते हुए समकालीन राजनीतिक विमर्श में एक सार्थक योगदान प्रदान करता है।

8. निष्कर्ष

मानव और पर्यावरण का संबंध मूलतः पूरक, अंतःनिर्भर एवं गतिशील है। मानव सभ्यता का विकास प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग पर आधारित रहा है, किंतु आधुनिक औद्योगिक एवं तकनीकी विकास-प्रक्रिया ने पर्यावरणीय संतुलन को गंभीर रूप से प्रभावित किया है। अनियंत्रित शहरीकरण, संसाधनों का अति-दोहन, औद्योगिक प्रदूषण तथा जलवायु परिवर्तन ने पर्यावरणीय संकट को गहरा किया है, जिससे सतत विकास (Sustainable Development) की अवधारणा वैश्विक विमर्श का केंद्रीय विषय बन गई है (IPCC, 2021)।

भारतीय संदर्भ में पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में न्यायपालिका ने एक सक्रिय एवं संरक्षक भूमिका निभाई है। Supreme Court of India तथा विभिन्न उच्च न्यायालयों ने लोकहित याचिका (Public Interest Litigation—PIL) के माध्यम से पर्यावरणीय अधिकारों की रक्षा को सुदृढ़ किया है। न्यायालयों द्वारा अनुच्छेद 21 के अंतर्गत 'जीवन के अधिकार' की व्यापक व्याख्या करते हुए स्वच्छ एवं स्वस्थ पर्यावरण को मौलिक अधिकार का अंग माना गया है (Jain, 2016; Sathe, 2002)।

इसी क्रम में Uttarakhand High Court के निर्णय पर्यावरणीय न्यायशास्त्र (Environmental Jurisprudence) के विकास की दिशा में महत्वपूर्ण कदम सिद्ध हुए हैं। नैनीताल क्षेत्र में पॉलीथीन प्रतिबंध, झील क्षेत्र में अवैध निर्माण पर रोक तथा अतिक्रमण हटाने जैसे आदेशों ने यह प्रदर्शित किया है कि न्यायपालिका प्रशासनिक निष्क्रियता की स्थिति में संवैधानिक मूल्यों की रक्षा हेतु हस्तक्षेप कर सकती है। इन निर्णयों ने पर्यावरणीय शासन (Environmental Governance) में जवाबदेही एवं पारदर्शिता को सुदृढ़ करने का प्रयास किया है।

तथापि, यह भी स्पष्ट है कि न्यायिक सक्रियता अपने आप में स्थायी समाधान नहीं है। दीर्घकालिक एवं प्रभावी पर्यावरण संरक्षण के लिए प्रशासनिक इच्छाशक्ति, नीति-निर्माण में वैज्ञानिक दृष्टिकोण, सुदृढ़ क्रियान्वयन तंत्र तथा जन-जागरूकता अनिवार्य है।

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 ISSN No: 3049-4176

पर्यावरणीय लोकतंत्र की स्थापना तभी संभव है जब न्यायपालिका, कार्यपालिका, विधायिका एवं नागरिक समाज के मध्य समन्वित प्रयास किए जाएँ (United Nations Environment Programme [UNEP], 2019)।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मानव और पर्यावरण के मध्य संतुलन बनाए रखने के लिए संवैधानिक संस्थाओं की सक्रिय भूमिका, उत्तरदायी शासन एवं जनसहभागिता का समन्वय आवश्यक है। उत्तराखण्ड के संदर्भ में न्यायिक हस्तक्षेप ने पर्यावरणीय चेतना को सुदृढ़ किया है, किंतु सतत एवं दीर्घकालिक समाधान के लिए बहु-स्तरीय प्रयासों की निरंतर आवश्यकता बनी रहेगी।

संदर्भ सूची

1. Bisht, R. S. (2003). *Environment and sustainable development*. Rawat Publications.
2. Brimblecombe, P. (1987). *The big smoke: A history of air pollution in London since medieval times*. Routledge.
3. Creswell, J. W., & Creswell, J. D. (2018). *Research design: Qualitative, quantitative, and mixed methods approaches* (5th ed.). Sage Publications.
4. Cunningham, W. P., & Cunningham, M. A. (2004). *Principles of environmental science: Inquiry and applications* (2nd ed.). McGraw-Hill.
5. Cunningham, W. P., & Cunningham, M. A. (2004). *Principles of environmental science: Inquiry and applications* (2nd ed.). McGraw-Hill.
6. Dhara, V. R., & Dhara, R. (2002). The Union Carbide disaster in Bhopal: A review of health effects. *Archives of Environmental Health, 57*(5), 391–404.
7. Encyclopaedia Britannica. (n.d.). *Environment*. In *Encyclopaedia Britannica*.
8. Intergovernmental Panel on Climate Change. (2021). *Climate change 2021: The physical science basis*. Cambridge University Press.
9. Intergovernmental Panel on Climate Change. (2021). *Climate change 2021: The physical science basis*. Cambridge University Press.
10. Iyer, V. R. K. (1987). *Law, freedom and change*. Eastern Book Company.
11. Jain, M. P. (2016). *Indian constitutional law* (8th ed.). LexisNexis.
12. Jain, M. P. (2016). *Indian constitutional law* (8th ed.). LexisNexis.
13. Jain, M. P. (2016). *Indian constitutional law* (8th ed.). LexisNexis.
14. Jain, M. P. (2016). *Indian constitutional law* (8th ed.). LexisNexis.
15. Kala, C. P. (2014). Deluge, disaster and development in Uttarakhand Himalayan region of India: Challenges and lessons for disaster management. *International Journal of Disaster Risk Reduction, 8*, 143–152.
16. Krippendorff, K. (2018). *Content analysis: An introduction to its methodology* (4th ed.). Sage Publications.

17. Locke, J. (1975). *An essay concerning human understanding* (P. H. Nidditch, Ed.). Oxford University Press. (Original work published 1690)
18. Pandey, G. N. (2004). *Environmental studies*. Vikas Publishing House.
19. Purohit, S. S., Shammi, Q. J., & Purohit, A. (2014). *A textbook of environmental sciences*. Student Edition.
20. Sathe, S. P. (2002). *Judicial activism in India: Transgressing borders and enforcing limits*. Oxford University Press.
21. Sathe, S. P. (2002). *Judicial activism in India: Transgressing borders and enforcing limits*. Oxford University Press.
22. Sathe, S. P. (2002). *Judicial activism in India: Transgressing borders and enforcing limits*. Oxford University Press.
23. Sathe, S. P. (2002). *Judicial activism in India: Transgressing borders and enforcing limits*. Oxford University Press.
24. Singh, Y. K. (2016). *Environmental science*. New Age International Publishers.
25. Tansley, A. G. (1935). The use and abuse of vegetational concepts and terms. *Ecology, 16*(3), 284–307.
26. United Nations Environment Programme. (2016). *A snapshot of the world's water quality: Towards a global assessment*. UNEP.
27. United Nations Environment Programme. (2019). *Environmental rule of law: First global report*. UNEP.
28. United Nations Environment Programme. (2019). *Environmental rule of law: First global report*. UNEP.
29. World Health Organization. (2018). *Environmental noise guidelines for the European region*. WHO.